# श्री धवलसिद्धान्त ग्रंथराज

## श्री. रतनचंदजी मुख्त्यार

**मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।**
**ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये ॥**

यह जीवात्मा अनादिकाल से चतुर्गति (नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव) रूप संसार में भ्रमण करता हुआ दुख उठा रहा है। यद्यपि कभी कभी काकतालि–न्यायवत् साता वेदनीय कर्मोदय से इन्द्रिय–जनित सुख की प्राप्ति हो जाती है किन्तु उस समय भी तृष्णा के कारण विषय–चाह रूप दाह से तपतायमान रहता है। इस भवभ्रमण रूप संसार के दुःखों से छूटने का उपाय विश्वतत्त्वज्ञ और कर्मरूप पहाड के भेदनेवाले मोक्षमार्ग के नेता ने स्वयं मोक्षमार्ग पर चल कर अपनी दिव्य–ध्वनि द्वारा बतलाया है। अतः उनको नमस्कार किया गया है।

भरतक्षेत्र वर्तमान पंचमकाल में यद्यपि उन नेताओं की उपलब्धि नहीं है तथापि उनके द्वारा हितोपदेश के आधार पर गणधरों द्वारा रचित द्वादशाङ्ग के कुछ सूत्र मूल रूप से अभी भी उपलब्ध है। यह हमारा अहोभाग्य है।

**" आगमचक्खू साहू इंदिय चक्खूणि सव्वभूदाणि ।"** [प्रवचनसार ३।३४]

सब मनुष्यों के चर्मचक्षु अर्थात इन्द्रिय चक्षु होती है। किन्तु साधु पुरुष के आगमचक्षु होते हैं।

**" जिणसत्थादो अट्ठे पच्चक्खादीहिं बुज्झदोणियमा ।**
**खीयदि मोहोवचयो तम्हा सत्थं समधिदव्वं ॥"** [प्रवचनसार १।८६]

जिन आगम के अध्ययन से जीव अजीव आदि पदार्थों अर्थात द्रव्य गुण, पर्यायों का ज्ञान होता है, जिससे मोह का नाश होता है।

**" एयग्गगदो समणो एयग्गं णिच्छिदस्स अत्थेसु ।**
**णिच्छित्ती आगमदो आगमचेट्ठा तदो जेट्ठा ॥"** [प्रवचनसार ३।३२]

जिन आगम से जीव आदि पदार्थों का यथार्थ ज्ञान होता है जिससे सम्यग्दर्शन–ज्ञानचारित्र की एकता होती अर्थात अभेद (निश्चय) रत्नत्रय की प्राप्ति होती है। अतः आगम का अध्ययन प्रधान है।

**" मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम् ।"** [मोक्षशास्त्र १०।१]



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस दर्शन–ज्ञान–चारित्र की एकाग्रता से चारित्र मोहनीय का क्षय होता है। चारित्र–मोहनीय कर्म का क्षय होने पर ज्ञानावरण, दर्शनावरण तथा अन्तराय कर्म का क्षय होता है।

**" आगमहीणो समणो णेवप्पाणं परं वियाणादि।**
**अविजाणंतो अट्ठे खवेदि कम्माणि किध भिक्खू।"** [प्रवचनसार ३।३३]

जिनके जिनागम रूप चक्षु नहीं हैं वे पुरुष मोक्षमार्ग में अंधे है और जीव अजीव को नहीं जानते। अतः वे मोह का नाश नहीं कर सकते। जिसके मोह का नाश नहीं हुआ उसके कर्मों का नाश भी नहीं हो सकता।

**" आगमः सिद्धान्तः "**[1] अर्थात आगम सिद्धान्त को कहते हैं।

जीव अजीव आदि पदार्थों को जानने के लिये सिद्धान्त शास्त्रों के अध्ययन की अत्यन्त आवश्यकता है इसके बिना जीव आदि पदार्थों का यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। यथार्थ ज्ञान के बिना मोह का अभाव नहीं हो सकता अर्थात सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

आगम के दो भेद हैं—१ अंग प्रविष्ट, २ अंग बाह्य। अंग प्रविष्ट बारह प्रकार का है। १ आचाराङ्ग, २ सूत्रकृताङ्ग, ३ स्थानाङ्ग, ४ समवायाङ्ग, ५ व्याख्याप्रज्ञप्ति-अङ्ग, ६ नाथधर्मकथाङ्ग ७ उपासकाध्ययनाङ्ग ८ अंतःकृद्दशांङ्ग ९ अनुत्तरौपपादिक दशाङ्ग, १० प्रश्नव्याकरणाङ्ग, ११ विपाक सूत्राङ्ग, १२ दृष्टिवादाङ्ग। इन बारह अंगों को ही द्वादशांग कहते हैं। बारहवें दृष्टिवादाङ्ग के पांच भेद हैं। १ परिकर्म, २ सूत्र ३ प्रथमानुयोग, ४ पूर्वगत और ५ चूलिका। चौथा भेद पूर्ववत चौदह प्रकार का है। अतः द्वादशांग 'ग्यारह अंग चौदहपूर्व' के नाम से भी प्रसिद्ध है। उपाध्याय परमेष्ठी के २५ गुण बतलाये हैं वे भी ११ अङ्ग १४ पूर्व की अपेक्षा से कहे गये हैं। इसके अतिरिक्त जो भी आगम हैं वह अङ्गबाह्य है।

भरतक्षेत्र में दुःखम् सुषम् चतुर्थ काल के तीन वर्ष साढे आठ मास शेष रह गये थे तब कार्तिक कृष्णा पंद्रस के दिन अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी निर्वाण को प्राप्त हुए। उनके पश्चात ६२ वर्ष में तीन अनुबद्ध केवल ज्ञानी हुए। उसके पश्चात १०० वर्ष तक पांच श्रुत केवली हुए। उसके पश्चात १८१ वर्ष तक दशपूर्वधारी रहे। फिर १२३ बर्ष तक ११ अंगधारी रहे। उसके पश्चात दस, नव व आठ अंगधारी ९९ वर्ष तक रहे। उसके पश्चात ११८ वर्ष में एक अंग के धारी पांच आचार्य हुए। इनको शेष अङ्गों व पूर्व के एक देश का भी ज्ञान था। इन पांच आचार्यों के नाम तथा काल निम्न प्रकार है:—

**अहिवल्लि माघनंदि य धरसेणं पुप्फयंत भूदबली।**
**अडवीसं इगवीस उगणीसं तीस वीस वास पुणो ॥१६॥**

[ नन्दि आम्नाय की पट्टावली ]

इस पट्टावली अनुसार वीर निर्वाण के ५६५ वर्ष पश्चात एक अङ्ग के धारी अर्हद्बलि आचार्य हुए जिनका काल २८ वर्ष था। उसके पश्चात एक अङ्गधारी माघनन्दि आचार्य हुए इनका काल २१ वर्ष रहा। इसके

---

१. धवल, पु. १, पृ. २९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पश्चात श्री धरसेन आचार्य हुए, जो सोरठ देश के गिरिनगर की चन्द्रगुफा में ध्यान करते थे। इनका काल १९ वर्ष रहा। श्री धरसेन आचार्य को दृष्टिवाद नामक बारहवे अंग के चौथे भेद पूर्वगत अर्थात् १४ पूर्व के अंतरगत दूसरे अग्रायणीय पूर्व के पांचवे भेद चयन लब्धी के एक देश सूत्रों का ज्ञान था। उन्हें इस बात की चिन्ता हुई कि उनके पश्चात द्वादशांग के सूत्रों के ज्ञान का लोप हो जायगा। अतः श्री धरसेन आचार्य ने महिमा नगरी के मुनि सम्मेलन को पत्र लिखा जिसके फलस्वरूप वहाँ के दो मुनि उनके पास पहुंचे। श्रीधरसेन आचार्य ने उनकी बुद्धि की परीक्षा करके उन्हें सिद्धान्त अर्थात द्वादशाङ्ग के सूत्र पढ़ाये। ये दोनों मुनि पुष्पदंत और भूतबलि थे। इनका काल क्रमशः ३० वर्ष व २० वर्ष रहा।

दृष्टिवाद बारहवें अंग के चौथे भेद पूर्वगत अर्थात् १४ पूर्व के अन्तर्गत दूसरे अग्रायणीय रहा। पूर्व के पांचवें भेद चयनलब्धि के जो सूत्र श्री पुष्पदन्त और भूतबलि को श्री धरसेन आचार्य ने पढ़ाये थे। इन दोनों मुनियों ने उन सूत्रों को षट्-खण्ड रूप से लिपीबद्ध किया और पुस्तकारूढ़ करके ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमी को चतुर्विध संघ के साथ उन पुस्तकों को उपकरण मान श्रुतज्ञान की पूजा की जिससे श्रुतपञ्चमी पर्व की प्रख्याति आज तक चली आती है और इस तिथि को आज तक श्रुत की पूजा होती है।[1] इन छह खण्डों में श्री गणधर कृत द्वादशाङ्ग के सूत्रों का संकलन है। अतः इस ग्रन्थ का नाम षट्-खण्डागम प्रसिद्ध हुआ। आगम और सिद्धान्त एकार्थवाची है।[2] अतः श्री वीरसेन आचार्य ने इसको षट्खण्डसिद्धान्त कहा है। श्री इन्द्रनन्दि ने श्रुतावतार में इसको षट्खण्डागम कहा है।[3]

षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड का नाम 'जीवट्ठाण' है, इसमें १४ गुणस्थानों व १४ मार्गणाओं की अपेक्षा १. सत्, २. संख्या, ३. क्षेत्र, ४. स्पर्शन, ५. काल, ६. अन्तर, ७. भाव, ८. अल्पबहुत्व इन आठ अनुयोगद्वार द्वारा जीव का कथन है तथा नौं चूलिकाएं हैं जिनमें १ प्रकृतिसमुत्कीर्तना, २ स्थानसमुत्कीर्तना, ३–५ तीन महादण्डक, ६ जघन्यस्थिति, ७ उत्कृष्टस्थिति, ८ सम्यक्त्वोत्पत्ति, ९ गतिआगति का कथन है।

दूसरा खण्ड 'खुद्दाबन्ध' है। इसमें १ स्वामित्व, २ काल, ३ अन्तर, ४ भंगविचय, ५ द्रव्यप्रमाणानुगम, ६ क्षेत्रानुगम, ७ स्पर्शनानुगम, ८ नाना जीव काल, ९ नाना जीव का अन्तर, १० भागाभागानुगम, ११ अल्पबहुत्वानुगम इन ग्यारह प्ररूपणाओं द्वारा कर्मबंध करनेवाले जीव का वर्णन किया गया है।

तीसरा खण्ड 'बन्ध स्वामित्व विचय' है। इसमें मार्गणाओं की अपेक्षा कितनी प्रकृतियों का कौन बन्धक हे और उनकी बन्ध व्युच्छिति किस गुण स्थान में होती है तथा स्वोदय बन्ध प्रकृतियों व परोदय बन्ध प्रकृतियों इत्यादि का कथन सविस्तार पाया जाता है।

---

१. "ज्येष्ठसितपक्षपञ्चम्यां चातुर्वर्ण्यसंघसमवेतः।
तत्पुस्तकोपकरणैर्व्यधात् क्रिया पूर्व के पूजाम् ॥१४३॥
श्रुतपञ्चमीति तेन प्रख्यातिं तिथिरियं परामाप।
अद्यापि येन तस्यां श्रुतपूजाम् कुर्वते जैनाः ॥१४४॥" (इन्द्रनन्दि श्रुतावतार)

२. "आगमो सिद्धंतो पवयणामिदि एयट्ठो।" धवल, पु. १, पृ. २०.

३. षट्खण्डागमरचनाभिप्रायं पुष्पदन्तो गुरोः ॥१३७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौथे खंड का नाम 'वेदना' है। इस खंड में सर्वप्रथम वह मंगलाचरण है जो श्री गौतम गणधर ने किया था। मूल रूप से इसके दो भेद है। १. कृति अनुयोगद्वार, २. वेदना अनुयोगद्वार। कृति अनुयोगद्वार में औदारिक आदि पांच शरीरों की संघातन, परिशातन और संघातन-परिशातन कृति का कथन है। वेदना अनुयोगद्वार में ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों की द्रव्य वेदना, क्षेत्र वेदना, काल वेदना, भाव वेदना तथा प्रत्यय स्वामित्व वेदना, गति, अनन्तर, सन्निकर्ष, परिमाण, भागाभाग अल्पबहुत्व का कथन है।

पाँचवा वर्गणा नामक खंड है। इसमें कर्म प्रकृतियों तथा पुद्गल की तेइस वर्गणाओं का विशेष कथन है। मनोवर्गणा तथा भाषा वर्गणा चार चार प्रकार की और कार्मण वर्गणा आठ प्रकार की बतलाई गई है। ज्ञानावरण कर्म के लिये जो कार्मण वर्गणा है उस कार्मण वर्गणा से दर्शनावरण आदि कर्मों का बन्ध नहीं हो सकता है। इस खंड में प्रत्येक शरीर वर्गणा निगोद शरीर (साधारण शरीर) वर्गणा का भी सविस्तार कथन है।

छटवां खण्ड महाबन्ध है। इस खण्ड में मूल कर्म प्रकृति व उत्तर कर्म प्रकृतियों की अपेक्षा प्रकृति बन्ध, स्थिति बन्ध, अनुभाग बन्ध व प्रदेश बन्ध का सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव, अल्प-बहुत्व इन आठ अनुयोग द्वारा चौदह मार्गणाओं में सविस्तार कथन है। उत्तर कर्म प्रकृति प्रकृतियों के बन्ध प्रत्यय का कथन करते हुए तीर्थंकर प्रकृति के बन्ध का कारण सम्यक्त्व और अहारक शरीर नाम कर्म प्रकृति के बन्ध का कारण संयम को बतलाया है इस प्रकार गणधर रचित द्वादशांग सूत्रों में सम्यक्त्व और संयम को भी बन्ध का कारण कहा है।

**"आहारदुगं संजमपच्चयं। तित्थपरं सम्मत्तपच्चयं।"** [महाबन्ध, पु. ४, पृ. १८६]

वर्तमान में जो आगम अर्थात शास्त्र उपलब्ध है उन सब में षट्खण्डागम शास्त्र सर्व श्रेष्ठ है। क्योंकि यह एक ऐसा शास्त्र है जिसमें द्वादशाङ्ग के सूत्र ज्यों के त्यों हैं। श्री पुष्पदंत व भूतबलि आचार्यों का स्थान सर्वोपरि है, क्योंकि सर्व प्रथम उन्होंने ही द्वादशांग के सूत्रों को संकलित कर षट्-खण्डागम शास्त्र की रचना की है।

**"पणमवि पुप्फदंतं दुकयंतं दुण्णयंधयार-रविं।**
**भग्ग-सिव-भग्गा-कंटयमिसि-समिइ-वइम सयादंतं॥**
**पणमह कय-भूय-बलिं केस-वास-परिभूय-बलिं।**
**विणिहय-वम्मह-पसरं वड्ढाविय-विमल-णाण-वम्मह-पसरं॥"**

जो दुष्कृत अर्थात हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह रूप पापों का अन्त करने वाले हैं (जिन्होंने पंचमहाव्रत धारणकर हिंसा आदि पांच पापों का अन्त कर दिया है।) जो कुनय (निरपेक्ष नय) रूपी अन्धकार के नाश करने के लिये सूर्य के समान हैं अर्थात अनेकान्त व स्याद्वाद रूप प्रकाशमान हैं जिन्होंने मोक्षमार्ग के कंटक (मिथ्यात्व, अज्ञान, और असंयम) को नष्ट कर दिया है। जो ऋषियों की सभा (संघ) के अधिपति आचार्य हैं और निरन्तर जो पंचेन्द्रियों का दमन करने वाले हैं, ऐसे पुष्पदंत आचार्य को मैं प्रणाम करता हूं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो भूत अर्थात् प्राणिमात्र से पूजे गये हैं, अथवा भूत–नामक व्यंतरजाति के देवों द्वारा पूजे गये हैं। जिन्होंने अपने केशपाश अर्थात् संयत सुन्दर बालों से बलि अर्थात् जरा आदि से उत्पन्न होने वाली शिथिलता को तिरस्कृत कर दिया है, जिन्होंने कामदेव के प्रसार को नष्ट कर दिया है। और जिन्होंने निर्मल ज्ञान के द्वारा ब्रह्मचर्य के प्रसार को बढ़ा दिया है ऐसे भूत–बलि आचार्य को प्रणाम करता हूँ।

इस षट्खण्डागम पर अनेक आचार्यों ने टीका रची है। १. कुन्दकुन्द नगर के श्री पद्मनन्दि अपर नाम श्री कुन्दकुन्द आचार्य द्वारा रचित परिकर्म टीका। २. श्री शामकुंड आचार्य विरचित 'पद्धति' टीका, ३ श्री तुम्बुलूर आचार्य कृत 'चूडामणि' टीका, ४ श्री समन्तभद्र स्वामी कृत टीका, ५ श्री बप्पदेव गुरु कृत 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' टीका। ये पांचों टीका इस समय उपलब्ध नहीं हैं इनमें से कुछ का उल्लेख श्री वीरसेन आचार्य ने अपनी 'धवल' टीका में किया है।

इस 'षट्खण्डागम' ग्रन्थ के प्रथम पांच खण्डों पर श्री. वीरसेन आचार्य ने ७२ हजार श्लोक प्रमाण धवल नामक टीका रची है। श्री वीरसेन आचार्य के विषय में श्री जिनसेन आचार्य ने निम्न प्रकार कहा है।

'श्री वीरसेन आचार्य साक्षात् केवली के समान समस्त विश्व के पारदर्शी थे। उनकी वाणी षट्खण्डागम में अस्खलित रूप से प्रवृत्त होती थी। उनकी सर्वार्थ गामिनी नैसर्गिक प्रज्ञा को देख कर सर्वज्ञ की सत्ता में किसी मनीषी को शंका नहीं रही थी। विद्वान लोग उनकी ज्ञान रूपी किरणों के प्रसार को देख कर उन्हें प्रज्ञा श्रमणों में श्रेष्ठ आचार्य और श्रुत केवली कहते थे। सिद्धान्त रूपी समुद्र के जल से उनकी बुद्धि शुद्ध हुई थी। जिससे वे तीव्र बुद्धि प्रत्येक–बुद्धों से भी स्पर्धा करते थे। उन्होंने चिरन्तन काल की पुस्तकों की खूब पुष्टि की। और इस कार्य में वे अपने से पूर्व के समस्त पुस्तक पाठियों से बढ़ गये थे। श्री वीरसेन आचार्य भट्टारक पद पर आरूढ़ थे। वे वादि–वृन्दारक थे तथा सिद्धान्तोपनिबन्ध कर्त्ता थे।"

श्री वीरसेन आचार्य की धवल टीका ने आगम सूत्रों को चमका दिया, इसीलिए उनकी 'धवला' को भारती की भुवनव्यापिनी कहा है।

**धवला भारती तस्य कीर्तिं च शुचि–निर्मलाम्।**
**धवलीकृतनिःशेषभुवनां तां नमाम्यहम्॥५८॥** [आदिपुराण–उत्थानिका]

इस टीका के विस्तार व विषय के पूर्ण परिचय तथा पूर्वमान्यताओं व मतभेदों के संग्रह, आलोचन व मंथन द्वारा पूर्ववर्ती टीकाओं को पाठकों की दृष्टि से ओझल कर दिया अर्थात् इस धवल टीका के प्रभाव में सब प्राचीन टीकाओं का प्रचार रुक गया।

इस धवल टीका में कहीं कहीं पर श्री कुन्दकुन्द आदि आचार्यों की गाथाओं के शब्दों का सीधा अर्थ न करके अन्य अर्थ किया गया है। क्योंकि सीधा अर्थ करने से सिद्धान्त व युक्ति से विरोध आता था। जैसे—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) श्री कुन्दकुन्द आचार्य ने बारस अनुवेक्खा के अन्तर्गत संसार अनुप्रेक्षा की दूसरी गाथा में कहा है कि "इस पुद्गल परिवर्तन रूप संसार में समस्त पुद्गल इस जीव ने एक एक करके पुनः पुनः अनन्त बार भोग कर छोड़े हैं।" इस गाथा के आधार पर समस्त विद्वानों की यही धारणा, बनी हुई है कि प्रत्येक जीव ने समस्त पुद्गल भोग लिया है। ऐसा कोई भी पुद्गल नहीं है जिसको न भोगा हो, किन्तु श्री वीरसेन आचार्य कहते हैं कि प्रत्येक जीव एक समय में अभव्यों से अनन्त गुणा तथा सिद्धों के अनन्तवें भाग पुद्गल को भोगता है। इस पुद्गल राशि को यदि सर्व जीव राशि तथा अतीत काल के समयों की संख्या से गुणा कर दिया जाय तो सर्व जीवों द्वारा अतीत काल में भोगे गये पुद्गल का प्रमाण आ जाता है। यह पुद्गल का प्रमाण समस्त पुद्गल राशि के अनन्तवें भाग है। जब सर्व जीव द्वारा भी समस्त पुद्गल नहीं भोगा गया। तो एक जीव द्वारा समस्त पुद्गल का अनन्त बार भोगा जाना असम्भव है। अतः श्री कुन्दकुन्द आचार्य की गाथा में जो 'सर्व' पद आया है उस सर्व शब्द की प्रवृत्ति सर्व के एक भाग में की गई है जैसे 'ग्राम जल गया', 'पद जल गया' इत्यादिक वाक्यों में उक्त शब्द ग्राम और पदों के एक देश में प्रवृत्त हुए देखे जाते हैं अतः एक देश के लिये भी सर्व शब्द का प्रयोग होता है। सर्व से समस्त का ग्रहण न होकर एक देश का भी ग्रहण होता है।

"अदीद काले वि सव्व जीवेहि सव्व पोग्लाणमणं तिमभागो सव्व जीव रासीदो अनन्त गुणों, सव्व जीवराशि उवरिमवग्गादो अनन्तगुण हीणों पोग्गलपुंजोमुत्तुजिण्ण दो। कुदो! अमवसिद्धिएहि अनन्तगुणेण सिद्धाणमणंतिम भागेण गुणिदादी कालमेत्त सव्व जीव रासि समाण मुत्तुज्झिद पोग्गल परिमाणोवसंमा—

**सव्वे वि पोग्गला खलु एगे मुत्तुज्झिदा दु जीवेण।**
**असइं अणंत खुत्तो योग्ग परिपट्ट संसारे॥**

एदिए सुत्तगाहए सद्द विरोहो किण्ण होदि ति भणिदे ण होदि, सव्वेदेसम्हि गाहत्थ–सव्व–सद्दप्पवुत्तीदो। ण च सव्वम्हि पयट्टमाणस्स सदस्स एगदेसपउत्ती असिद्धा, गामो दड्ढो, पदोदड्ढो, इच्चादिसु गाम–पदाणमेगदेसपयट्ट सद्दुवलंभादो।" [धवल, पु. ४, पृ. ३२६]

सामान्य ग्रहण को दर्शन कहते हैं। यहां पर आये हुए 'सामान्य' शब्द का अर्थ धवल में 'आत्म पदार्थ' किया गया है। जब कि समस्त विद्वान 'सामान्य' शब्द से वस्तु का सामान्य लेते है।

चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन तथा अवधि दर्शन के विषय का प्रतिपादन करने वाली गाथाओं में इन दर्शनों का विषय यद्यपि बाह्य पदार्थ बतलाया गया है किन्तु श्री वीरसेन आचार्य ने इन गाथाओं का पारमार्थिक अर्थ करते हुए कहा है कि इन्द्रिय ज्ञान से पूर्व ही जो सामान्य स्वशक्ति का अनुभव होता है और जो ज्ञान की उत्पत्ति में निमित्त रूप है वह दर्शन है यथार्थ में दर्शन की अन्तरंग में ही प्रवृत्ति होती है। किन्तु बालकजनों को ज्ञान कराने के लिए बहिरंग पदार्थों के आश्रय से दर्शन की प्ररुपणा की गई है यदि गाथा का सीधा अर्थ किया जाय और दर्शन का विषय बहिरंग पदार्थ का सामान्य अंश माना जावे तो अनेक दोषों का प्रसंग आ जायगा।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**जं सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्टु आयारं ।**
**अविसेसिऊण अत्थे दंसणमिदि भण्णदे समए ॥**

ण च एदेण सुत्तेणेदं वक्खाणं विरुज्झदे अप्पत्थम्मि पउत्तसामण्णसद्दग्गहणादो ।

**चक्खूण जं पयासदि दिस्सदि तच्चक्खुदंसणं वेंति ।**
**सेसिंदिय-प्पयासो णादव्वो सो अचक्खु त्ति ॥**
**परमाणु-आदियाइं अन्तिमखंधं ति मुत्तिदव्वाइं ।**
**तं ओधि-दंसणं पुण जं पस्सइ ताइ पच्चक्खं ॥**

इदि वज्जत्थविसयदंसणपरुवणादो ? ण, एदाणं परमत्थत्थाणुवगमादो । को सो परमत्थत्थो ? बुच्चदे-जं यत् चक्खूणं चक्षुषां पयासदि प्रकाशते दिस्सदि चक्षुषा दृश्यते व तं तत् चक्खुदंसणं चक्षुर्दर्शनमिति वेंति ब्रुवते । चक्खिंदियणाणादो जो पुव्वमेव सुवसत्तीए सामण्णाए अणुद्दओ चक्खुणाणुप्पत्तिणिमित्तो तंचक्खुदसणमिदि उत्तं होदि । कधमंतरंगाए चक्खिंदियविसयपडिबद्धाए सत्तीए चक्खिंदियस्स पउत्ती ? ण, अंतरंग बहिरंगत्थोवयारेण बालजण—बोहणट्ठं चक्खूणं जं दिस्सदि तं चक्खुदसणमिदि परुवणादो । गाहाए गल भंजणमकाऊण उज्जुवत्थो किण्ण घेप्पदि ? ण तत्थ पुव्वुत्ता सेसदोसप्पसंगादो (धवल, पुस्तक ७, पृ. १०१) ओहिणाणु-प्पत्तिणिमित्तो तं ओहिदंसणमिदि घेत्तव्वं, अण्णहा णाणदंसणाणं भेदाभावादो [ धवल, पु. ७, पृ. १०२ ]

सामान्य को छोड़ कर केवल विशेष अर्थ क्रिया करने मैं असमर्थ है । और जो अर्थ क्रिया करने में असमर्थ होता है, वह अवस्तु है । अवस्तु का ग्रहण करने वाला ज्ञान प्रमाण नहीं हो सकता है केवल विशेष का ग्रहण नहीं हो सकता है । क्योंकि सामान्य रहित, अवस्तु रुप केवल विशेष में कर्त्ताकर्म रूप व्यवहार नहीं बन सकता है । इसी तरह केवल सामान्य को ग्रहण करने वाले दर्शन को भी प्रमाण नहीं माना जा सकता । अतः सामान्य विशेष बाह्य पदार्थ को ग्रहण करने वाला ज्ञान और सामान्य विशेषात्मक आत्म-स्वरूप को ग्रहण करने वाला दर्शन है यह सिद्ध हो जाता है ।

" न ज्ञानं प्रमाणं सामान्यव्यतिरिक्तविशेषस्यार्थक्रियाकर्तृत्वं प्रत्यसमर्थत्वतोऽवस्तुनो ग्रहणात् । न तस्य ग्रहणमपि सामान्यव्यतिरिक्ते विशेषे ह्यवस्तुनि कर्तृकर्मरूपाभावात् । तत एव न दर्शनमपि प्रमाणम् । ततः सामान्यविशेषात्मकबाह्यार्थग्रहणं ज्ञानं, तदात्मकस्वरूपग्रहणं दर्शनमिति सिद्धम् । "

[ धवल, पुस्तक १, पृ. १४६-४७ ]

श्री वीरसेन आचार्य को षट्खण्डागम के सूत्रों पर इतनी दृढ़ श्रद्धा थी कि यदि उनके सामने सूत्र विरुद्ध अन्य आचार्यों का कोई मत आ गया तो उन्होंने उसका निर्भीकता पूर्वक खंडन किया है यहां तक कि श्री कुन्दकुन्द जैसे महानाचार्य की परिकर्म टीका के कुछ मतों का खंडन करते हुए उनको सूत्र विरुद्ध कहा है जैसे :—

१. ज्योतिष्क देवों का प्रमाण निकालने के लिए दो सौ छप्पन सूच्यमूल के वर्गप्रमाण जगप्रतर का भागहार बताने वाले सूत्र से जाना जाता है कि स्वयम्भू रमण समुद्र के परभाग में भी राजू के अर्द्धच्छेद होते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**शंका**—जितनी द्वीप और सागरों की संख्या है, तथा जितने जम्बूद्वीप के अर्द्धच्छेद होते हैं, एक अधिक उतने ही राजू के अर्द्धच्छेद होते हैं। इस प्रकार के परिकर्म सूत्र के साथ यह उपर्युक्त व्याख्यान क्यों नहीं विरोध को प्राप्त होगा ?

**समाधान**—भले ही परिकर्म सूत्र के साथ उक्त व्याख्यान विरोध को प्राप्त होवें, किन्तु प्रस्तुत सूत्र के साथ तो विरोध को प्राप्त नहीं होता है। इसलिए इस ग्रन्थ ( षट्खण्डागम ) के व्याख्यान को ग्रहण करना चाहिए तथा सूत्रविरुद्ध परिकर्म के व्याख्यान को नहीं। अन्यथा अतिप्रसंग दोष प्राप्त हो जायेगा।

**सयंभू रमणसमुद्दस्स परदो रज्जुच्छेणया अत्थित्ति कुदो णव्वदे ?**

वे छप्पण्णंगुलसदवग्गसुत्तादो। ' जत्तियाणि दीव-सागररुवाणि जम्बूदीव छेदणाणि च रुवाहियाणि तत्तियाणि रज्जुच्छेदणाणि ' त्ति परियम्मेण एदं वक्खाणं किण्ण विरुज्झदे ? एदेण सह विरुज्झदि, किन्तु सुत्तेण सह ण विरुज्झदि। तेणे दस्सगहणं कायव्वं, ण परियमस्स; तस्स सुत्तविरुद्धत्तादो। ण सुत्तविरुद्धं वक्खाणं होदि अइप्पसंगादो। [ धवल, पु. ४ पृ., १५५-५६ ]

२. कोई जीव बादर एक इन्द्रियों में उत्पन्न हो कर, वहां पर यदि अति दीर्घ काल तक रहता है, तो असंख्याता-संख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी तक रहता है। पुनः निश्चय से अन्यत्र चला जाता है, ऐसा कहा गया है।

**शंका**—कर्म स्थिति को आवली के असंख्यातवें भाग से गुणा करने पर बादर स्थिति होती है इस प्रकार के परिकर्म वचन के साथ यह सूत्र विरोध को प्राप्त होता है।

**समाधान**—परिकर्म के साथ विरोध होने से ' षट्खण्डागम ' इस सूत्र के अवक्षिप्तता नहीं प्राप्त होती है, किन्तु परिकर्म का उक्त वचन सूत्र का अनुसरण करनेवाला नहीं है, इसलिए उसमें ही अवक्षिप्तता का प्रसंग आता है।

" बादरे इंदिएसु उप्पज्जिय तत्थ जदि सुट्ठु महल्लं कालय च्छदि तो असंखेज्जासंखज्जाओं ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीओ अच्छदि। पुणो णिच्छएण अण्णत्थ गच्छदि त्ति जं वुत्तं होदि। ' कम्मट्ठिदिमावलि-पाय असंखेज्जदिभागेन गुणिदे बादरट्ठिदि जादा ' ति परियम्मव्यणेण सह एदं सुत्तं निरुज्झदि त्ति णेदस्स ओक्खत्तं, सुत्ताणुसरि परियम्मवयणं ण होदि त्ति तस्सेव ओक्खत्तप्पसंगा।" [ धवल, पु. ४, पृ. ३८९-९० ]

श्री वीरसेन आचार्य ने अन्य आचार्यों की गाथाओं का ही अर्थ तोडमोड कर नहीं किया किन्तु षट्खण्डागम के सूत्रों की भी परस्पर संगति बैठाने के लिए उनको षट्खण्डागम के सूत्रों का अर्थ भी तोड मोड कर करना पड़ा। जैसे सत्प्ररुपणा का सूत्र नं. ९० इस प्रकार है:—

**" सम्मामिच्छाइट्ठि-संजदासंजद-संजदट्ठाणे णियमा पज्जत्ता। "**

**अर्थ**—सम्यग्मिथ्यादृष्टि, संयतासंयत और संयत जीव नियम से प्रर्याप्त होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**प्रश्न**—कपाट, प्रतर और लोक-पूरण समुद्घात को प्राप्त केवली प्रर्याप्त है या अप्रर्याप्त है। श्री अरहंत केवली संयत है अतः सूत्र ९० के अनुसार प्रर्याप्त होने चाहिए, किन्तु समुद्घात में उनके औदारिक-मिश्रकाय योग है। "**ओरालियमिस्सकायजोगे अपज्जत्ताणं**" ॥७८॥ इस सूत्र के अनुसार "औदारिक मिश्रकाय योग अप्रयाप्तों का होता है।" समुद्घात गत केवली अप्रर्याप्त होने चाहिए। इससे सूत्र नं. ९० में 'नियम' शब्द सार्थक नहीं रहेगा। इसका समाधान करते हुए 'नियम' शब्द का जो अर्थ श्री वीरसेन आचार्य ने किया है, वह ध्यान देने योग्य है।

"सूत्र ९० में नियम शब्द निरर्थक तो माना नहीं जा सकता है, क्योंकि श्री पुष्पदंत आचार्य के वचन से प्राप्त तत्त्व में निरर्थकता का होना विरुद्ध है। सूत्र की नियमता का प्रकाशन करना भी, 'नियम' शब्द का फल नहीं हो सकता है। क्योंकि ऐसा मानने पर जिन सूत्रों में नियम शब्द नहीं पाया जाता उनमें अनियमता का प्रसंग आ जायेगा। परन्तु ऐसा है नहीं क्योंकि ऐसा मानने पर उपरोक्त सूत्र नं. ७८ में नियम शब्द का अभाव होने से अप्रर्याप्तको में भी औदारिक काययोग के अस्तित्व का प्रसंग प्राप्त होगा, जो इष्ट नहीं है। अतः सूत्र ९० में आया हुआ नियम शब्द ज्ञापक है, न्यामक नहीं है। यदि ऐसा न माना जाय तो अनर्थक पने का प्रसंग आ जायेगा इस 'नियम' शब्द से क्या ज्ञापित होता है? सूत्र ९० में नियम शब्द से ज्ञापित होता है कि 'सम्यग्मिथ्यादृष्टि संयतासंयत और संयत स्थान में जीव नियम से पर्याप्तक होते हैं'॥९०॥ यह सूत्र अनित्य है अपने विषय में सर्वत्र समान प्रवृति का नाम नित्यता है और अपने विषय में कहीं प्रवृत्ति हो, कहीं न हो इसका नाम अनित्यता है। इससे उत्तर शरीर को उत्पन्न करने वाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि संयतासंयत और संयतों के तथा कपाट, प्रतर लोकपूर्ण समुद्घात को प्राप्त केवली के अपर्याप्तपना सिद्ध हो जाता है।" [धवल पुस्तक, २, पृ. ४४१ व ४४३]

इस प्रकार सूत्र ७८ की रक्षार्थ सूत्र ९० में 'नियम' शब्द का अर्थ युक्ति व सूत्रों के बल पर 'अनियम' किया गया है यह श्री वीरसेन की महानता है।

षट्खंडागम के पांचवे वर्गणा खंड के बंधानुयोग द्वार में भावबंध कथन करते हुए सूत्र १६ में अविपाक प्रत्ययिक जीव भाव बंध, (१) औपशमिक-अविपाक प्रत्ययिक जीव भावबंध (२) और क्षायिक-अविपाक प्रत्ययिक जीव भावबंध, दो प्रकार का बतलाया गया है।

**जो सो अविवागपच्चइयों जीव भाव बंधो णाम सो दुविहो-उवसमियो अविभाग पच्चइयो जीवभाव बंधो चेव खइयों अविवाग पच्चइओ जीव भाववंधो चेव॥१६॥**

इस पर प्रश्न हुआ कि तत्वार्थ सूत्र में जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व की पारणामिक (कर्मनिरपेक्ष) भाव कहा है, इनका अविपाक प्रत्ययिक जीव भाव बंध में कथन क्यों नहीं किया? इसका समाधान करते हुए श्री वीरसेन आचार्य ने जीवत्व आदिक तीनों भाव को कथन चित्त औदयिक निम्न प्रकार सिद्ध किया है:—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"आयु आदि प्राणों को धारण करना जीवन है। वह अयोगी के अंतिम समय से आगे नहीं पाया जाता, क्योंकि सिद्धों के प्राणों के कारण भूत आठों कर्मों का, प्रभाव है। इसलिये सिद्ध जीव नहीं है अधिक से अधिक वे जीवित पूर्व कहे जा सकते हैं। सिद्धों में प्राणों का अभाव अन्यथा बन नहीं सकता। इससे ज्ञात होता है कि जीवत्व पारिणामिक नहीं है किन्तु वह कर्म के विपाक से उत्पन्न होता है क्योंकि जो जिसके सद्भाव और असद्भाव का अविनाभावी होता है वह उसका है। ऐसा कार्यकारण भाव के ज्ञाता कहते हैं। ऐसा न्याय है। इसलिये जीव भाव औदायिक है, यह सिद्ध होता है। तत्त्वार्थसूत्र में जीवत्व को पारिणामिक कहा है, वह प्राणों को धारण करने की अपेक्षा से नहीं कहा है, किन्तु चैतन्य गुण की अपेक्षा से वहां वैसा कथन किया है। इसलिये वह कथन भी विरोध को प्राप्त नहीं होता। चार अघाति कर्मों के उदय से उत्पन्न हुआ असिद्धत्व औदायिक भाव है। वह दो प्रकार का है—अनादि अनन्त और अनादि–सान्त इसमें से जिसके असिद्ध भाव अनादि अनन्त हैं वे अभव्य हैं और जिनके दूसरे प्रकार का है वे भव्य जीव हैं। इसलिये भव्यत्व और अभव्यत्व में भी विपाक प्रत्ययिक ही है। असिद्धत्व का अनादि–अनन्तपना और अनादि–सान्तपना निष्कारण है, यह समझकर इनको तत्त्वार्थसूत्र में पारणामिक कहा है। [धवल, पु. १४, पृ. १२–१४]

श्री वीरसेन आचार्य को गणित पर भी पूर्ण अधिकार था। विभिन्न भिन्न राशियों में जहां पर अंश नवोत्तर क्रम से और छेद (हर) द्विगुण क्रम से होकर जाते है उन विभिन्न राशियों के मिलाने (जोड़ने) के लिये करण सूत्र (Formula) दिया है जो अन्यत्र नहीं पाया जाता है।

"इच्छित गच्छ का विरलन राशि के प्रत्येक राशि एक को दूना कर परस्पर गुणा करने से जो उत्पन्न हो उसकी दो प्रतिराशियां स्थापित कर उसमें से एक उत्तर (चय) सहित आदि राशि से गुणित कर इसमें से उत्तर गुणित इच्छा राशि को उत्तर व आदि संयुक्त करके घटा देने पर जो शेष रहे, उसमें आदिम–छेद के अर्ध भाग से गुणित प्रतिराशि का भाग देने पर इच्छित संकलना का प्रमाण आता है।

**"इच्छां विरलिय गुणिय आण्णोण्णगुणं पुणो दुपड़िरासिं काऊण एक्क रासि उत्तर जुद आदिणा गुणिय॥** [धवल, पु. १४, पृ. १९६]

**"उत्तर गुणिंदं इच्छं उत्तर आदीए संजुदं अवणे। सेसं हरेज्ज पडिणा आदिम छेदद्धगु णिदेण।** [धवल, पु. १४, पृ. १९७]

जैसेः—$\frac{२}{३} + \frac{३}{८} + \frac{४}{१५} + \frac{५}{२१} + \frac{६}{२८} + \frac{७}{३६}$ इन छः विभिन्न संख्याओं का जोड़ना हैं यहां पर इच्छित गच्छ ६ है। इसका विरलन कर प्रत्येक के ऊपर दो दो रख कर परस्पर गुणा करने से $(१\ १\ १\ १\ १\ १)\ २^६$ अर्थात ६४ आता है। उसकी दो प्रति राशियां स्थापित कर ६४ ६४ का उनमें से एक राशि (६४) को उत्तर सहित आदि राशि (९ + २२ = ३१) से गुणित कर (६४ × ३१ = १९८४) में से उत्तर (९) गुणित इच्छा (६) (९ × ६ = ५४) को उत्तर (९) आदि (२२) संयुक्त करके (५४ + ९ + २२ = ८५) घटा देने पर जो शेष रहे (१९८४ – ८५ = १८९९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसमें आदिम–छेद ( २७ ) के अर्धभाग ( $\frac{२७}{२}$ ) से गुणित प्रति राशि ( ६४ ) अर्थात ( $\frac{२७}{२} \times ६४ = ८६४$ ) का भाग देने पर इच्छित संकलना का प्रमाण $\frac{१८९९}{८६४}$ प्राप्त होता है।

श्री वीरसेन आचार्य ने इस प्रकार के अनेकों करणसूत्र ( Formula ) धवल पुस्तक ३१४ आदि में लिखे हैं। किन्तु कहीं कहीं पर उनके अनुवाद में भूल हुई है, क्योंकि अनुवादक विद्वत् मंडल विशेष गणितज्ञ नहीं था। यदि पुनरावृत्ति में गणित के विशेषज्ञों की साह्यताके करणसूत्र का ठीक ठीक अनुवाद किया जाय तो उत्तम होगा।

श्री वीरसेन आचार्य ने 'सव्व सपडिक्खा' अर्थात 'सर्व सप्रतिपक्ष' है इस सिद्धान्त का पद पद पर प्रयोग किया है और इस सिद्धान्त पर बहुत जोर दिया है। सूक्ष्म जीव और साधारण जीव दृष्टि-गोचर नहीं होते हैं इसलिये कुछ व्यक्ति ऐसे जीवों का सद्भाव स्वीकार नहीं करते। श्री वीरसेन आचार्य धवल, पुस्तक ६ में कहते हैं कि यदि सूक्ष्म जीवों का सद्भाव स्वीकार न किया जायगा तो उन (सूक्ष्म जीवों) के प्रतिपक्षी बादर जीवों के अभाव का प्रसंग आ जायगा, क्योंकि सर्वत्र प्रतिपक्ष है। यदि साधारण जीव ( निगोदिया जीवों ) का सद्भाव न माना जाय तो साधारण जीवों के प्रतिपक्षी प्रत्येक जीव के अभाव का प्रसंग आ जायगा। इसी प्रकार यदि जीव का अस्तित्व न स्वीकार किया जाय तो पुद्गल आदि अजीव द्रव्यों के अस्तित्व को अभाव का भी प्रसंग आ जायगा।

धवल, पुस्तक १४, पृष्ठ २३३ पर एक प्रश्न उत्पन्न हुआ कि संसारी जीव राशि आयसे रहित है और व्यय सहित है, क्योंकि उसमें से मोक्ष को जाने वाले जीव उपलब्ध होते हैं, इसीलिए संसारी जीवों का अभाव ( समाप्त ) प्राप्त होता है ? श्री वीरसेन आचार्य शंका का समाधान करते हुऐ लिखते हैं।

" जिन्होंने अतीत काल में कदाचित् भी त्रस परिणाम ( पर्याय ) नहीं प्राप्त किया है, वैसे अनन्त जीव नियम से हैं। "

**" अत्थि अणंता जीवा जेहि ण पत्तो तसाण परिणामों।**
**भाव कलंक अपउरा णिगोद वासं ण मुंचंति ॥१२७॥**

[ धवल, पु. १४, पृ. २३३ ]

अन्यथा संसार में भव्य जीवों का अभाव प्राप्त होता है। उनका अभाव है नहीं, क्योंकि भव्य जीवों का अभाव होने पर अभव्य जीवों का भी अभाव प्राप्त होता है, और वह भी नहीं है, क्योंकि उनका ( भव्य और अभव्य दोनों का ) अभाव होने पर संसारी जीवों का अभाव प्राप्त होता है और यह भी नहीं है क्योंकि संसारी जीवों का अभाव होने पर असंसारी ( मुक्त ) जीवों के भी अभाव का प्रसंग आता है। यदि कहा जावे कि संसारी जीवों का अभाव होने पर असंसारी ( मुक्त ) जीवों का अभाव कैसे सम्भव है ( क्योंकि संसारी सब जीवों के मुक्त अवस्था को प्राप्त हो जाने पर संसारी जीवों का अभाव तो सम्भव है किन्तु मुक्त जीवों का अभाव सम्भव नही है )। इसका समाधान यह है कि संसारी जीवों का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभाव होने पर असंसारी (मुक्त) जीव भी नहीं हो सकते, क्योंकि सब सप्रतिपक्ष पदार्थों की उपलब्धि नहीं बन सकती। अर्थात् प्रतिपक्ष के बिना पदार्थ का सद्भाव संभव नहीं है।

'अनेकान्त' का सिद्धान्त श्री वीरसेन आचार्य का प्राण था उन्होंने एकान्त मान्यताओं का खंडन किया है और अनेकान्त को सिद्ध किया है। पुद्गल परमाणु को प्रायः सब पंडितगण निरवयव (अविभागी) मानते हैं। श्री वीरसेन आचार्य ने धवल, पुस्तक १३, पृष्ठ २१-२४ तथा धवल, पुस्तक १४, पृष्ट ५६-५७ परमाणु को निरवयव अर्थात अविभागी तथा सावयव अर्थात भाग सहित माना है। द्रव्यार्थिक नय से पुद्गल परमाणु निरवयव है, क्योंकि यदि परमाणु के अवयव होते है ऐसा माना जाय तो परमाणु को अवयवी होना चाहिये। परन्तु ऐसा है नहीं। क्योंकि अवयव के विभाग द्वारा अवयवों के संयोग का विनाश होने पर परमाणु का अभाव प्राप्त होता है। पर्यायार्थिक नय का अवलम्बन करने पर परमाणु के अवयव नहीं होते यह कहना ठीक नहीं है। क्योंकि यदि उसके उपरिम, अधस्तन, मध्यम और उपरिमोपरि भाग न हो तो परमाणु का भी अभाव प्राप्त होता है। ये भाग कल्पित रूप होते हैं यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि परमाणु में ऊर्ध्वभाग और मध्यम भाग तथा उपरिमोपरिम भाग कल्पना के बिना भी उपलब्ध होते हैं। तथा परमाणु के अवयव हैं। इसलिये उनका सर्वत्र विभाग ही होना चाहिये ऐसा कोई नियम नहीं है। क्योंकि ऐसा मानने पर तो सब वस्तुओं के अभाव का प्रसंग प्राप्त होता है। [धवल, पु. १४, पृ. ५६-५७]

अभव्यत्व जीव की व्यंजन पर्याय भले ही हो, परन्तु सभी व्यंजन पर्याय का अवश्य नाश होना चाहिये ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि इससे एकान्त वाद का प्रसंग आ जाता है। [धवल, पुस्तक ७, पृ. १७८] सब सहेतुक ही हो ऐसा कोई नियम नहीं है क्योंकि इससे भी एकान्त वाद का प्रसंग आता है [धवल, पु. ७, पृ. ४६३]

इस प्रकार का कथन प्रायः धवल की सभी पुस्तकों में पाया जाता है।

श्री वीरसेन आचार्य की विशेषता यह रही कि जिस विषय का उनको परम्परागत उपदेश प्राप्त नहीं हुआ उस विषय में उन्होंने अपनी लेखनी नहीं उठाई किन्तु स्पष्ट रूप से अपनी अनभिज्ञता स्वीकार की है जैसे—

"ण च अम्हे एत्थ वोत्तु समत्था अलद्धोवदेसत्तादो" अर्थात हम यह कहने के लिये समर्थ नहीं है क्योंकि हमको वैसा उपदेश प्राप्त नहीं है। "माणुसखेत्तादो ण णव्वदे।" मनुष्य क्षेत्र की अपेक्षा कितने क्षेत्र में रहते है यह ज्ञात नहीं है। इसमें श्री वीरसेन आचार्य की निरभिमानता प्रकट होती है।

जहां पर उन्हें आचार्य परम्परागत उपदेश प्राप्त होता है वहाँ उन्होंने स्पष्ट लिख दिया है कि यह विषय आचार्य परम्परागत उपदेश से प्राप्त होता है। जैसे "कुदो वगम्मदे? आइरिय परांपरगय उवएसादो।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षट्खंडागम के सूत्र का अर्थ करने पर किसी ने शंका की यह कैसे जाना जाता है, उसके उत्तर में श्री वीरसेन आचार्य ने कहा कि जिन भगवान के मुंह से निकले हुए वचन से जाना जाता है।

"कधमेदे णव्वदे ? जिणवयण विणि गयवयणादों।" इससे जाना जाता है कि षट्खंडागम के सूत्र द्वादशांग के सूत्र हैं। धवल, पु. ७, पृ. ५४१ पर एक शंका के उत्तर में कहा है कि 'इस शंका का उत्तर गौतम से पूछना चाहिये।' इससे अभिप्राय है यह सूत्र गौतम गणधर द्वारा रचित हैं।

अतः प्रत्येक जैन को धवल–ग्रंथ की स्वाध्याय करनी चाहिये क्योंकि वर्तमान में इससे महान ग्रंथ अन्य नहीं है। जिन भट्टारक महाराज ने इनकी रक्षा की वे भी धन्य के पात्र हैं। यदि वे रक्षा न करते तो ऐसे महान् ग्रंथ के दर्शन असम्भव थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org